Golden Research Thoughts
ISSN 2231-5063
Volume-3 | Issue-10 | April-2014 Available online at www.aygrt.isrj.net

GRT

मोहन राकेश के नाटकों में मानवीय अस्मिता की तलाश

अंजली

सारांश - मौजूद,अहम की सततप्रक्रिया से गुजरतीरहती हैं।अस्मिता शब्द 'अस्मि' होने का बोध करता है।प्रत्येक वस्तु की अपनी अपनीजगह अस्मिता होती है। परंतु अर्थ की दृष्टिसे मनुष्य की अस्मिताही स्वीकार्य है। हिन्दी संदर्भ कोश मेंअस्मिता का अर्थ "योग के अनुसार पाँच क्लेशों में से एक,दृक (ज्ञान),दृष्टा और दर्शनशक्ति को एक मानना अथवा पुरुष (आत्मा)और बुद्धि मे अभेद मानने की भ्रांति है।

प्रस्तावना-

" योग दर्शन मे साधनपद में क्लेशों का वर्णन किया गया है। योग सूत्र 2/3 अभिदा अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश मरणमय जनक अज्ञान का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।____ दृक शक्ति और दर्शन शक्ति इन दोनों का एक रूप की भांति अनुभूति होना ही अस्मिता है।पुरुष देखने वाला दृक शक्ति है अथवा दृष्टा है। बुद्धि या चित 'दर्शनशक्ति' दिलाने वाला है। पुरुष चैतन्य चित जड़ है पुरुष क्रिया-रहित है, चित क्रिया वाला है। पुरुष सत, राज, तम तीनों गुणों से मुक्त है। पुरुस स्वामी चित सेवक है। पुरुष अपरिणामी चित परिणामी है। इस प्रकार ये दोनों भिन्न होने पर भी अभिधा के कारण दोनों मे ज्ञान नहीं होता। यही अस्मिता क्लेश है, इसी को हृदय-ग्रंथि कहते हैं, विवेक ख्याति होने पर अस्मिता क्लेश शिथिल हो जाते हैं और हृदय ग्रंथि मिट जाती है। इस अस्मिता क्लेश से मन इंद्रियाँ और शरीर मे ममत्व (आत्मभाव) पैदा हो जाता है।प्रत्येक मनुष्य अपनी एक विशिष्ट सत्ता होती है। जिसके कारण ही उसके अंदर आत्मविश्वास, गर्व और अभिमान होता है। अस्तित्ववाद महायुद्धों की उपज है। युद्धों मे विनाश के फलस्वरूप परंपरागत मूल्यों मे मनुष्यों की आस्था डगमगाने लगी। फलतः यह विचार बना की मनुष्य स्वतंत्र है। परंतु यह भी मात्र भ्रम सिद्ध हुआ मनुष्य जब अकेला रेहता है तो उसके अंदर ऊब, त्रास, कुंठा आदि घर कर जय हैं। वह स्वयं को अधूरा मानने लगता है। लेकिन सामाजिक प्राणी होने के कारण नियमों से बंध कर भी रहता है, जिससे अपने ही परिवेश मे वह अजनबी हो जाता है। यही स्थिति युद्धत्तोर मानव समाज की हुई। उसे महसूस होने लगा कि वह स्वयं की अस्मिता को कहीं खो चुका है। यही कारण है की आज मनुष्य समस्त शक्ति से अपनी योग्यता स्थापित करने मे लगा है। लेकिन वस्तु स्थिति यह है की अपने निर्णय की निशित घोषणा नहीं कर सका। लेकिन इसका दोष भी डॉ० बच्चन सिंह ने मनुष्य के

व्यक्तित्व में ही निकाला है, मनुष्य पहले अस्तित्व मे आता है और अपने को परिभाषित करता है वह वही होगा जो अपने को बनाएगा।

मोहन राकेश ने अपने तीनों बहुचर्चित नाटकों- आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, और आधे-अधूरे के माध्यम से मानवीय अस्मिता की तलाश का सफल प्रयास किया है। उनके इन नाटकों मे पात्र अपनी अस्मिता की खोज मे प्रवृत दिखाई देते हैं। वह एक-दूसरे से धोखा खाकर, अपमानित होकर और आर्थिक कठिनाइयों के भंवर मे फँसकर कई बार टूटते हैं। उन सभी में आत्म-विश्वास नहीं है वह यह निर्णय भी नहीं कर पातें हैं कि उनका कोई अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। इन नाटकों का प्रत्येक पात्र एक दूसरे के बिना अधूरा है और पूर्णता कि तलाश मे भटकता रहता है। स्थिति यह है कि वह पूर्णता अंत तक उन्हे नहीं मिल पाती है। लेकिन अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए यथा-संभव संघर्ष भी करते हैं।

आज प्रत्येक व्यक्ति असीमित आकांक्षाओं के मध्य स्वयं को खंडित अनुभव कर रहा है अर्थात अपने आपको अधूरा समझ रहा है। नाटककार ने इस समस्या को बड़े सशक्त ढंग से अपने नाटकों मे पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। सभी नाटकों में पात्र एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं और अन्त तक एक-दूसरे को पा लेने और अपनी मौजूदगी अर्थात अस्मिता कि पहचान के लिए संघर्षरत हैं।

मोहन राकेश का ‘आषाढ़ का एक दिन’ पहला नाटक है। कथावस्तु कालीदास और मल्लिका के अंतरंग जीवन से संबन्धित है। कालीदास प्रसिद्ध कवि होने से पहले प्रेयसी मल्लिका का है। मल्लिका एक सीधी-साधी, भावुक, प्रेममयी, समर्पण, भावना से युक्त, भावना में भावना का वरण करने वाली, अपनी कोमल, अनश्वर, पवित्र भावना से प्रेम करने वाली है। वास्तव में मल्लिका कालीदास कि प्रगति में बाधा नहीं बनना चाहती थी अर्थात दूसरे शब्दों में उसे अपनी पहचान बनाने में सहयाक सिद्ध होना चाहती है। मैं जानती हूँ तुम्हारे चले जाने से मेरे अंतर को एक रिक्तता छा लेगी। बाहर भी संभवतः बहुत सूना प्रतीत होगा। फिर भी मैं अपने से छल नहीं कर रही ---- मैं हृदय से कहती हूँ तुम्हें जाना चाहिए। वस्तुतः मल्लिका व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर कालीदास को महान होते देखना चाहती है। यही कारण है कि कालीदास के उज्जैन जाने का वियोग उसे इतना नहीं सताता बल्कि उसे इस बात की खुशी है कि कालीदास उज्जैन राज्य का राजकवि बनाया है और राजकवि बनना अपने आपमें श्रेष्ठता है। वस्तुतः व्यक्ति अपनी अस्मिता को तभी प्राप्त कर सकता है जब वह इस मानवीय समाज की अर्थव्यवस्था, सत्ता और आत्मीयता सम्बन्धों के विरोधाभास और टकराहटों में स्वयं का संतुलन बनाये रखे। मल्लिका आज की नारी की विवशता का रूप है। वह अंदर से टूटकर भी कालीदास से जुड़ी रहती है। कालीदास उसके जीवन में नहीं रहा फिर भी कालीदास के प्रति उसके मन में आस्था बनी रही। मैंने यह सब सह लिया। इसलिए कि मैं अपने को अपने में न देखकर तुममें देखती थी। मल्लिका निरंतर कालीदास कि याद में तिल-तिल कर जलती है, लेकिन उसकी वेदना को कोई नहीं समझ पाता। मैं यदपि तुम्हारे जीवन में नहीं रही, परंतु

तुम मेरे जीवन मेंसदा बने रहे हो। मैंने कभी तुम्हें अपने से दूर नहीं होने दिया। तुम रचना करते रहे और मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ। अर्थात उसी में वह स्वयं के गौरव को ढूंढती है। वस्तुतः प्रिय के गौरव कि अभिवृद्धि ही उसके जीवन का सर्वस्व है, उसका उन्नयन ही उसकि परम अभिलाषा। मोहन राकेश के शब्दों मल्लिका जो कालीदास कि आस्था का विस्तारित रूप है। भूमि में रोपित उस स्थिर आस्था का भी है जो ऊपर से झुलसकर अपने मूल में विरोपित नहीं होती। अंबिका का सारा जीवन पीड़ा में व्यतीत हुआ है मल्लिका के बिना वह अधूरी है। मल्लिका कि व्यथा उसकी अपनी व्यथा है। ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः वह स्वयं भी कभी ऐसी ही स्थिति से गुजर चुकी है। तभी तो उसमें भी छटपटाहट एवं घुटन है। अपनी परिस्थिति के लिए व्यक्ति अकेला ज़िम्मेवार नहीं होता, क्योंकि स्थितियाँ कुछ भी होती, उसे बार-बार उसी का चुनाव करना पड़ता ज़िंदगी में व्यक्ति कुछ चुने उससे एक विशेष 'आइरनी' होती है, क्योंकि परिस्थिति फिर वही बन जाती है।

डॉ॰ ज्ञानराज के अनुसार संघर्ष डॉ प्रकार के होतें हैं – एक बाह्य संघर्ष होता है, तो दूसरा आंतरिक संघर्ष। परिस्थिति-विशेष के संदर्भ, विभिन्न कारणों से व्यक्ति और नियति, व्यक्ति और प्रकृति, व्यक्ति और संघर्ष छिड़ता है। आंतरिक संघर्ष परिस्थिति-विशेष के संदर्भ मे परस्पर विरुद्ध प्रवृतियों मे छिड़ता है।कालीदास का संघर्ष आंतरिक है। मल्लिका का अभाव उसे निरंतर सताता है। हमेशा संघर्ष करने के बावजूद भी उसे सदैव असफलता मिली। अपनी अस्मिता कि तलाश वह नाटक के अंत तक करता है। कालीदास जिस वेदना को भोगता है वह उसे झकझोर देती है। कश्मीर से भागकर जब वह मल्लिका के पास पहुंचता है यह सोच कर कि इससे आगे भी तो जीवन शेष है। हम फिर अथ से आरंभ कर सकते हैं। तो वहाँ भी उसे धक्का लगता है जब यह मालूम पड़ता है कि मल्लिका के पास विलोम का बच्चा है। ऐसी स्थिति में उसके गौरव कि आखिरी आशा भी टूट जाती है। वह चुपचाप मल्लिका के घर से चला जाता है। वस्तुतः वह आज के युग का वह व्यक्ति है जो अंतर्द्वंद में भुनक-भटक रहा है। जिसका व्यक्तित्व शंकालु एवं संवेदनशील बन गया है। वस्तुतः कालीदास निरंतर अपनी अस्मिता के लिए छटपटता रहा। वह सब कुछ पाकर भी कुछ नहीं पा सका यों पा सकने और न पा सकने के बीच का जो अंतराल है वही उसके व्यक्तित्व कि सबसे बड़ी उपलब्धि है।

लहरों के राजहंस में एक ओर नन्द का आंतरिक संघर्ष है तो दूसरी और नन्द की रूपगर्विता पत्नी सुंदरी है, जिसके अहम, नारीत्वभिमान, आकर्षण की पकड़, पति को बांध कर रख सकने के अभियान को जो धक्का लगता है जब वह उसे मुंडित वेश में सामने देखती है। जिस अस्मिता को वह अपने पति के माध्यम से संतुष्ट करना चाहती है। वही नन्द इसे गहरी चोट देता है। इतना ही तो समझ पातें हैं ये लोग, इतना ही तो उसकी समझ मे आता है नन्द का गौतम बुद्ध बनकर लौटना सुंदरी के 'अहम' पर उसके विश्वास और आत्मविश्वास पर बहुत बड़ी चोट है। उसे खेद इस बात का है की नन्द इस चोट को नहीं

समझ पाया (कम से कम वह यही समझती है) और यह कहकर चला की मैं अपने खोये हुए केश लेने जा रहा हूँ। सुंदरी का संश्लिष्ट व्यक्तित्व नन्द के अनिवार्य से खंडित होता है। मनुष्य उस सब की ओर आकर्षित होता है जिसे आनंद कहते हैं और साथ ही ऐसी किसी चीज की ओर भी समान रूप से आकर्षित होता है, जिसे स्पष्ट प्रतीकों से प्रकट नहीं किया जा सकता, फिर भी वह उसे तनाव की स्थिति में ले जाने के लिए उतनी ही प्रभावी शक्ति है। यह स्थिति नन्द की भी है उसके अनिर्णय की प्रकृति उसके तनाव एवं पहचान को और अधिक गहरा कर देती है। वह अपनी पत्नी के प्रति गहरी आसक्ति रखता है, किन्तु ज्येष्ठ भाई गौतम बुद्ध के प्रति भी उसके मन में श्रद्धा है। नन्द को इन दोनों में से किसी एक को चुनने, स्वीकार करने का निर्णय करना है। लेकिन वह निर्णय नहीं कर पता कि किसे स्वीकार करे। उसकी अनिर्णय की स्थिति उसे हमेशा अस्थिर बनाए रखती है। "कुछ है जो चेतना पर कुंडली मारे बैठा रेहता है और मुझे अपने से मुक्त नही होने देता। मैं उससे मुक्त होना चाहता हूँ?क्या मैं हूँ यह क्यों कभी मन मे स्पष्ट नहीं हो पता।"उसमे आत्मविश्वास नहीं है,जिसके कारण वह निर्णय नहीं ले पाताऔर अपने पर ही खीझता रहता है। वस्तुतः नन्द अपनीपहचान की खोज न सुंदरी से करना चाहता है और न गौतम बुद्ध से। इसलिए तो वह कहता है की "मैं तुम्हारा या किसी का विश्वास ओढ़कर नहीं जी सकता,नहीं जीना चाहता।"

डॉ०ज्ञानराज के अनुसार ,"व्यक्ति के सामने चुनाव की,निर्णय करने की समस्या उपस्थिती होती है। व्यक्ति कीइच्छाओं,प्रवृतियों में विरोध उत्तपन्न होता है। व्यक्ति उनमें से किसी एक को चुनने,स्वीकार करने अथवा प्राधान्य देने का निर्णय करना चाहता है लेकिन यह निर्णय नहीं कर पता। क्योंकि उसका मन कभी इधर खींचा जाता है तो कभी उधर।"निर्णय न कर पाने की स्थित में नन्द अपने आप को अकेला और अधूरा समझने लगता है। "एक अकेला आदमी किसी अंधेरी घाटी में पहुँच जाने पर उसी को सत्यया शाश्वत मान लेता है और उसके सामने आत्मसमर्पण कर देता है।"नन्द की स्थिति उस व्यक्ति के समान है जो अपने अस्तित्व का ज्ञान तो समाज को करवाना चाहता है,लेकिन निर्णय लेने में अक्षम है और घुटन भरी ज़िंदगी जीने की लिए विवश है। "अंतिम दिन तक ज़िंदगी से जुड़े रहना यह किसी का अपने विकल्प नहीं है। यह ज़िंदगी की आंतरिक अनिवार्यता है।"इसी कारण ही वह अपने को त्रिशंकु की तरहलटका हुआ अनुभव करता है। "नन्दका द्वंद भी बुद्ध और सुंदरी का द्वंद है किन्तु बुद्ध नन्द को आकृष्ट करता है।नन्द बुद्ध नहीं बन जाता। उसकी अपनी निजता और निजता की अपनी तलाश है।" "तलाश दो तरह की होती है-एक जिसका संबंध स्थूलतहबाह्य प्रतिमानों एवं उपादानों से होता है दूसरी वह जिसमे व्यक्ति अपने तलाशे हुए को भावनाओं की स्याही से मन के कागज पर उतारता जाता है।" व्यक्ति कभी अपनी अस्मिता की तलाश किसी अन्य व्यक्ति के सहारे नहीं कर सकता,अन्यथा उसकी स्थिति नन्द से भिन्न नहीं रहती। "नन्द सुंदरी केश्रृंगार कक्ष में रहना नहीं चाहता और यह भी ठीक है कि वह अपनी मुक्ति या व्यक्तित्व कि खोज भी सुंदरी के सहारे करनाचाहता है।"नन्द अपने व्यक्तित्व कि खोज सुंदरी अथवा बुद्ध के माध्यम से

कर रहा है जो उसे अंत तकप्राप्त नहीं होता और परिणामतः उसका समस्त जीवन अकुलाहट से भर गया। “अस्तित्व और अनस्तित्व के बीच मेरी चेतना का एक प्रशनचिह्न____केवल एक प्रशनचिह्न बनाकर छोड़ दियागया है।”

नन्द कि स्थिति में जो रहा व्यक्ति भी और अनिश्चितताामें जी रहा व्यक्ति सदैव द्वंद से जुड़ा होता है। द्वंदात्मक स्थिति अपूर्णता के कारण है। वह अंत तक यह नहीं खोज पता कि उसको पूर्णता सुंदरी के पास जाकर मिलेगी या बुद्ध के पास। इसलिए वह स्वयं को मरे हुए मृग की भांति मानता है। “परंतु बिना घाव अपनी ही क्लांति से मारे मृग को देख कर जाने कैसा लगा। उसी से अपने आप इतना थका और टूटा हुआ लाग्ने लगा।” बाहर से जीवित होकर भी वह जैसे भीतर से मरा हुआ है। केश काट देने का उसे इतना दुख नहीं है जितना उस समय होता है,जब उसकी पत्नी भी उसे स्वीकार नहीं करती। “तो तुम कह रही हो की मैं कोई दूसरा व्यक्ति हूँ। केवल इसलिए की किसी ने हठ से मेरे केश काट दिये हैंमुझे पहले से थोड़ा अपरूप बना दिया है?क्या इतने से ही व्यक्ति दूसरा होजाता है।”यह सारा कथन उसी की मानसिक स्थिति को उजागर करता है। वह कभी भूतकाल में चला जाता है,कभी वर्तमान के बारे में सोचने लगता है तो कभी भविष्य में शायद अच्छा हो,यह आशा करने लगता है। “ढुलमुक्त व्यक्तित्व के कारण वह बलात मुंडनकिए जाने का प्रतिरोध नहीं कर पता और जब उसे मुंडित कर दिया जाता है तो वह सन्यास को स्वीकार भी नहीं कर पता। दुविधा में वह न तो गृहस्थ स्वीकार करता है और न सन्यास ही। उसका अंतर्मुख विक्षोभ का बाह्य प्रकाश उसकेढुलमुल व्यक्तित्व के कारण नहीं हो सका-उसेस आत्मविनाश के मार्ग पर ले जात है।”सब कुछ होतेहुए भी उसके पास कुछ भी नहीं है। “मैं चौराहे पर खड़ा नंगा व्यक्ति हूँ। जिसे सभी दिशाएँ लील लेना चाहती हैं और अपने ढकने के लिए जिसके पास आवरण नहीं है।जिस किसी दिशा की ओर पैर बढ़ाता हूँ,लगता है वह दिशा स्वयं अपने ध्रुव पर डगमगा रही है,और मैं पीछे हट जाता हूँ।”वस्तुतः नन्द निवृति (बुद्ध)और प्रवृति (सुंदरी)के मध्य छटपटाता है तथा प्रवृति के माध्यम से निवृति का आकांक्षी है।

‘आधे-अधूरे’ नाटक आज के इंसान की ज़िंदगी की वीसंगति को उभरता है। इस नाटक में महेन्द्रनाथ और सावित्री के तनावपूर्ण,टूटन,व्यर्थता और तलाश को उभारागया है जिसका प्रभाव बच्चों पर भी पड़ा है बड़ा लड़का आवारा है,बड़ी लड़कीमाँ के प्रेमी के साथ ही भाग गई है और छोटी लड़की किन्नीउम्रसे पहले ही बड़ी हो गई है। सभी पात्र अधूरे हैं तथा पूर्णता की तलाश के लिए छटपटाते हैं। नाटककार ने मनुष्य के सामान्य जीवन के अधूरेपन का परिद्दश्य आधे-अधूरे में उकेरा है। डॉ०सुषमा अग्रवाल के अनुसार भी “आज मनुष्य की ज़िंदगी कितनी अधूरी है और अजनबीयत भरी हो गई है।वह कितना अधूरा हो गया है?बाहर से पूरा होकर भी भीतर से अधूरा है,खाली है और उसका जीवन रिक्तहै। पूरेपन को अधूरेपन की यह अनुभूति और फिर उसी अधूरेपन को पूरेपन से जोड़ने का प्रयत्न कठिन भले ही

हो किन्तु बेमन नहीं हो सकता।"महेंद्रनाथ प्रारम्भ से अंत तक अपनी पहचान केलिए छटपटाता रहता है। उसे अपनी उपस्थिती घर में न के बराबर महसूस होती है, "मैं इस घर में एक रबड़-स्टैम्प भी नहीं,सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ-बार-बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा।" फलतः परिस्थियों से टकरा टकरा कर बिखर चुका है। लेकिन विडम्बना यह है कि इनको झेलने के लिए विवश भी है। जब कभी उसे महत्व न देकर केवल दोषा रोपण किया जाता है तो झुँझला कर उसका आक्रोश मुखर हो उठता है। इस घर का आज तक कुछ बना है या आगे बन सकता है तो सिर्फ बाहर के लोगों के भरोसे, मेरे भरोसे तो सब कुछ बिगड़ता आया है और आगे बिगड़ सकता है। (लड़के के तरफ इशारा करके) ये आज तक बेकार क्यों घूम रहा है? मेरी वझा से (बड़ी लड़की की तरफ इशारा करके) यह बिना बताए घर से क्यों चली गई थी? मेरी वजह से (स्त्री के बिलकुल सामने आकार) और तुमने भी-----। जीवन संघर्षों मे लुट-पिटकर अपना विश्वास तक खो देने वाला महेन्द्रनाथ आधुनिक संदर्भों में त्रस्त-पस्त मनुष्य का प्रतिरूप है। डॉ० उर्मिला मिश्र के अनुसार, इस नाटक में मनुष्य की नियति की खोज नहीं है, न स्थिति की खोज है। आज एक ओर मनुष्य की तनावपूर्ण ज़िंदगी है तो दूसरी तरफ उसकी नींव में तंग माली हालत। महेन्द्रनाथ अपने को अस्तित्व-हीन और अर्थहीन महसूस करता है। वह जीवन में अपने आप से झूझता रहा, कुढ़ता रहा। कई बार घर छोड़ने का निश्चय भी कर लिया। परंतु चाहकर भी कुछ नही कर सका क्योंकि वह ऐसी दुःख भरी ज़िंदगी जीने के लिए विवश है।

अस्तित्ववाद ने मनुष्य और मनुष्य के बीच के सम्बन्धों और मनुष्य के अटल में विद्यमान नरक को पैनी आंखो से देखने की क्षमता दी तो वहीं पर अस्तित्ववाद के नाम पर रुग्णता के समर्थन की गाकट रूढ़ि भी चला दी है। जीवन जीते-जीते महेन्द्रनाथ विश्वास खो चुका है। जुनेजा के शब्दों में, आज महेंद्र कुढ़ने वाला आदमी। पर एक वक़्त था जब वह समुचल हँसता था पर यह तभी था जब कोई उस पर यह साबित करने वाला नहीं था कि कैसे हर लिहाज से वह हीन और छोटा है- इससे, उससे, मुझसे सभी से। जब कोई उसे यह कहने वाला नहीं था कि जो-जो वह नहीं है वही-वही उसे होना चाहिए, और जो वह है----। जुनेजा के शब्दों में तुमने इस तरहा शिकंजे में कस कर रखा है उसे कि वह अब अपने दो पैरों पर चल सक्ने के लायक भी नहीं रहा। उसकी हालत अपाहिज से भी बदत्तर है। जब व्यक्ति का स्वयं पर विश्वास नहीं रहता है तो वह महेन्द्रनाथ बन जाता है और इसी बात पर, जब सामने वाला भी उस व्यक्ति के व्यक्तिगत के आगे प्रश्नचिन्ह खड़ा करने लगता है तो उसकी रही सही पहचान और महत्व भी खत्म हो जाता है। आदम्मी होने के लिए क्या जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शख्शियत हो। सावित्री जो महेन्द्रनाथ को हर क्षण कोसती रहती है वस्तुतः वह भी अपनी अस्मिता कि तलाश कर रही है। उसने जब कभी जो कुछ भी चाहा उसे कभी प्राप्त नहीं हुआ उस हर स्थिति में सब पुरुष अधूरे लगते हैं उसकी चाहत ही पूरे आदमी क ओ पाने की रही है। वह किसी व्यक्ति के साथ स्वयं को संतुष्ट नहीं कर

सकी। वह एक पूरा आदमी चाहती है अपने लिए एक----पूरा----आदमी। गला फाड़ कर वह यह बात करती है। कभी इस आदमी को वह आदमी बना सकने की कोशिश करती है। कभी तड़पकर अपने को इससे अलग कर लेना चाहती है। महेन्द्रनाथ कभी उसे पूरा नहीं लगा। सच्चाई यह है कि आदमी कभी कोई पूरा नहीं होता आपसी सम्बन्धों कि पूर्णता ही उसे पूरा बनती है। सावित्री द्वारा यह पूर्णता की तलाश उसके अंदर की रिक्तता को ही व्यंजित करती है- पुरुषों में अधूरेपन को देखना उसके आंतरिक अधूरेपन को ही व्यक्त करता है। उसकी आंतरिक पूर्णता की तलाश उसकी अपनी विवशता और विसंगति है। इस कारण सावित्री के अंदर द्वंद चल रहा है कब तक और?----साल पर साल-----इसका यह हो जाए, उसका वह हो जाए----।-----एक दिन----दूसरा दिन।----एक साल----दूसरा साल---अब भी और सोचूँ थोड़ा ।-----कब तक क्यों।----घर, दफ्तर।----सोचो सोचो।----चख चख----किट किट----चख चख----किट किट। क्या सोचो? (उसांस के साथ) कुछ मत सोचो।----होने दो जो होता है। उसकी वेदना को घर का कोई भी सदस्य नहीं समझ पाता। सावित्री अवश्यकता से अधिक इच्छा रखने वाली स्त्री है। अधूरेपन को भरने के लिए इधर-उधर भागती है और पूरापन प्राप्त नहीं कर पाती। परिणामतः स्वयं घुटन, तनाव योगने के लिए विवश है। पूर्णता की तलाश में अपने घर को तहस-नहस करती है। इसी तलाश के कारण अकेलेपन में भटकती रहती है।

सावित्री अपनी घुटन और द्वंद को समाप्त करने के लिए इसदार-उधर भागती है। वह जिस पूरी शख्सियत की तलाश में सफल होना चाहती है। वह शख्सियत किसी विरले व्यक्ति में होती है अतः उसे गलत धारणा पाल कर अंततः निराश होना पड़ता है। यह जान उयर पहचान कर उसे चाहिए की वह भटकाव की प्रवृति को रोके, अपनी ही स्थितियों को ठीक रूप देने की कोशिश करे। बड़ी लड़की अपने में असंतोष अनुभव करती है। उसकी ज़िंदगी में बिखराव है। दो आदमी जितना भी साथ रहें, एक हवा में सांस लें, कितना ही एक-दूसरे को अजनबी महसूस करें। उसके मन में असंतोष है जिसके कारण ही वह अपने को अतृप्त अनुभव करती है। आप शायद सोच भी नहीं सकते की क्या-क्या होता है यहाँ। डैडी का चीखते हुये मम्मा के कपड़े तार-तार कर देना----उनके मुंह पर पट्टी बांधकर उन्हें बंद कमरे में पीटना-----खींचते हुए गुसलखाने मे कमोड पर ले जाकर----(सिहरकर) मैं तो बयान भी नहीं सकती कि कितने-कितने भयानक दृश्य देखें हैं इस घर में मैंने। ऐसी निरीह एवं अस्वाभाविक परिस्थितियों में रहने वाले व्यक्ति का मन ऊब जाना अस्वाभाविक नहीं है। कोई भी व्यक्ति ऐसे वातावरण में घुटने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता अन्यथा उसकी स्थिति बिन्नी कि तरहा होगी। बिन्नी कहीं भी अपने आप को पूर्ण नहीं मानती। उसका मन हमेशा छटपटाता रहता है। वह निरंतर कुछ तलाश करती रहती है। मेरा अपना घर। ----हाँ। और मैं आती हूँ कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देख लूँ कि क्या चीज़ है वह इस घर में जिसे लेकर बार-बार मुझे हीन क्या जाता है। (लगभग टूटते स्वर में) तुम बता सकती हो मम्मा। अपनी पूर्णता

कि तलाश के लिए कभी माँ बाप का घर जाती है तो कभी अपनी पति के घर लेकिन वह पूर्णता उसे अंत तक नहीं मिल पाती। लड़का भी उस घर में अपने आपको अधूरा समझता है। बेकार होने के कारण उसके मन में ऊब, कुंठा आदि घर कर गई हैं। माँ के इज्ज़तदार पुरुष-मित्रों के समक्ष अपने को हीन, आक्रोश होने पर भी कुछ कर पाने में असमर्थ अनुभव करता है। जिनके आने से हम जीतने छोटे हैं, उससे और छोटे हो जाते है। जब किसी भी व्यक्ति के आत्मसम्मान को ठेस लगती है तो वह अपने आप से ही घृणा करने लगता है। इसी कारण अशोक सिंघानिया जैसे लोगों के कार्टून बनाकर अपने को हल्का अनुभव करता है। किन्नी घर के वातावरण से ही जिद्दी,मुहफट हो गई थी। उसे निरंतर घर के लोगों से शिकायत रहती है। जिसके कारण वह अपने आपको अकेला अनुभव करती है। कुछ पता ही नहीं चलता यहाँ तो बताओ, चलता है कुछ पता? स्कूल से आई, तो घर पर कोई भी नहीं था। और अब आई हूँ, तो तुम लोग हो, डैडी भी हैं, बिन्नी दीदी भी हैं- पर सब लोग एसे चुप जैसे----। वह घर कि परिस्थितियों को समझने लगी है। यदि बच्चों के खेलने कूदने के दिनों में पारिवारिक समस्याएँ उनके सामने आती हैं तो वह बिन्नी कि तरहा ही विद्रोही बन जाते हैं। बच्चे माँ बाप के होते हुये भी अपने आपको अधूरा समझते हैं निरंतर अपनी अपनी अस्मिता को तलाशते रहते हैं जो उन्हें अंत तक नहीं मिल पाती। परिवार का हर सदस्य एक-दूसरे से काटा हुआ है। घर कि हवा तक में स्थायी तल्खी कि गंध है, जो पाँच व्यक्तियों के मन मे भरी हुई है- ऊब, घुटन, विद्रूप-दम घोटनें वाली मनहूसियत जो मरघट में होती है।

निष्कर्षत:

हम यह कहसकते हैं कि मोहन राकेश ने अपने तीनों नाटकों के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि प्रत्येक मनुष्य स्वयं कि अस्मिता कि पहचान को समाज से स्वीकार करवाने के लिए निरंतर संघर्षरत हैऔर इसी प्रक्रिया में उसकी भावना भीतर-ही-भीतर कसमसाती है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति की कहीं-न-कहीं बाध्यता भी हैकि वह अपने अस्तित्व का ज्ञान समाज को करवा भीनहीं पा रहा है और परिणामतः अंदर-ही-अंदर कहीं टूट रहा है। मानव का यह मूल स्वभाव है कि जब तक सामने वाला व्यक्ति उसके अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता तो वह अपनी ही बेचैनी,विव्श्ता एवं द्वंद में घिरा रहता है। मोहन राकेश के शब्दों में, “आज की दुनिया में हम अपने भीतर अधिकाधिक विभाजित होते जा रहे हैं क्योंकि प्रत्येक आदमी कहीं-न-कहीं बुद्ध होता जा रहर है। अर्थात उसकी यह अंदरूनी तलाश किसी चुने हुये व्यक्ति या मन की किसी तंखा तक सीमित नहीं हैं कि वह किसी दिन संसार को त्याग कर प्रकाश की खोज में निकलपड़ता है। हम में से हरेक के भीतर यह कीड़ा यानि इस तलाश की इच्छा मौजूद है।”

निष्कर्षत:

हम यह कहसकते हैं कि मोहन राकेश ने अपने तीनों नाटकों के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि प्रत्येक मनुष्य स्वयं कि अस्मिता कि पहचान को समाज से स्वीकार करवाने के लिए निरंतर संघर्षरत हैऔर इसी प्रक्रिया में उसकी भावना भीतर-ही-भीतर कसमसाती है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति की कहीं-न-कहीं बाध्यता भी हैकि वह अपने अस्तित्व का ज्ञान समाज को करवा भीनहीं पा रहा है और परिणामतः अंदर-ही-अंदर कहीं टूट रहा है। मानव का यह मूल स्वभाव है कि जब तक सामने वाला व्यक्ति उसके अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता तो वह अपनी ही बेचैनी,विव्ध्ता एवं द्वंद में घिरा रहता है। मोहन राकेश के शब्दों में, “आज की दुनिया में हम अपने भीतर अधिकाधिक विभाजित होते जा रहे हैं क्योंकि प्रत्येक आदमी कहीं-न-कहीं बुद्ध होता जा रहर है। अर्थात उसकी यह अंदरूनी तलाश किसी चुने हुये व्यक्ति या मन की किसी तंखा तक सीमित नहीं हैं कि वह किसी दिन संसार को त्याग कर प्रकाश की खोज में निकलपड़ता है। हम में से हरेक के भीतर यह कीड़ा यानि इस तलाश की इच्छा मौजूद है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. डॉ० लक्ष्मीसागर, हिन्दी संदर्भ कोश।
2. आचार्य श्री राम शर्मा, योग दर्शन साधनापद।
3. डॉ० बच्चन सिंह, आधुनिक आलोचना के बीज़ शब्द।
4. गिरीश रस्तोगी, समकालीन हिन्दी नाटककार।
5. मोहन राकेश, आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस।
6. मदन लाल, नाटककार मोहन राकेश -- संवाद और शिल्प।
7. मोहन राकेश, साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि।
8. डॉ० ज्ञानराज काशीनाथ, आधुनिक हिन्दी नाटकों में संघर्ष तत्व।
9. डॉ० शेखर शर्मा, समकालीन संवेदना और हिन्दी नाटक।
10. सुषमा अग्रवाल, मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व।
11. गोविंद चातक, आधुनिक नाटक का मसीहा मोहन राकेश।
12. जगदीश शर्मा, मोहन राकेश की रंग दृष्टि।
13. उर्मिला मिश्र, आधुनिकता और मोहन राकेश।

14. मोहन राकेश, आधे-अधूरे।
15. चंद्रकांत बांदीवडेकर, आधुनिक हिन्दी उपन्यास सृजन और आलोचना।
16. लक्ष्मी रॉय, आधुनिक हिन्दी नाटक चरित्र सृष्टि के आयाम।
17. डॉ० मंजुला दास, साठोत्तर नाटक में त्रासद तत्व।